रामचरितमानस

सुन्दरकाण्ड

चौपाई :

*** कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि कें बल घालेहि बन खीसा॥ की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही॥1॥

भावार्थ:-

लंकापति रावण ने कहा- रे वानर! तू कौन है? किसके बल पर तूने वन को उजाड़कर नष्ट कर डाला? क्या तूने कभी मुझे (मेरा नाम और यश) कानों से नहीं सुना? रे शठ! मैं तुझे अत्यंत निःशंख देख रहा हूँ॥1॥

*** मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥ सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥2॥

भावार्थ:-

तूने किस अपराध से राक्षसों को मारा? रे मूर्ख! बता, क्या तुझे प्राण जाने का भय नहीं है? (हनुमान्‌जी ने कहा-) हे रावण! सुन, जिनका बल पाकर माया संपूर्ण ब्रह्मांडों के समूहों की रचना करती है,॥2॥

*** जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥ जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥3॥

भावार्थ:-

जिनके बल से हे दशशीश! ब्रह्मा, विष्णु, महेश (क्रमशः) सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करते हैं, जिनके बल से सहस्रमुख (फणों) वाले शेषजी पर्वत और वनसहित समस्त ब्रह्मांड को सिर पर धारण करते हैं,॥3॥

*** धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥ हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥4॥

भावार्थ:-

जो देवताओं की रक्षा के लिए नाना प्रकार की देह धारण करते हैं और जो तुम्हारे जैसे मूर्खों को शिक्षा देने वाले हैं, जिन्होंने शिवजी के कठोर धनुष को तोड़ डाला और उसी के साथ राजाओं के समूह का गर्व चूर्ण कर दिया॥4॥

*** खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥5॥

भावार्थ:-

जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालि को मार डाला, जो सब के सब अतुलनीय बलवान् थे,॥5॥
दोहा :
*** जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि। तास दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥21॥
भावार्थ:-
जिनके लेशमात्र बल से तुमने समस्त चराचर जगत् को जीत लिया और जिनकी प्रिय पत्नी को तुम (चोरी से) हर लाए हो, मैं उन्हीं का दूत हूँ॥21॥
चौपाई :
*** जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥ समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा॥1॥
भावार्थ:-
मैं तुम्हारी प्रभुता को खूब जानता हूँ सहस्रबाहु से तुम्हारी लड़ाई हुई थी और बालि से युद्ध करके तुमने यश प्राप्त किया था। हनुमान्‌जी के (मार्मिक) वचन सुनकर रावण ने हँसकर बात टाल दी॥1॥
*** खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥ सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥2॥
भावार्थ:-
हे (राक्षसों के) स्वामी मुझे भूख लगी थी, (इसलिए) मैंने फल खाए और वानर स्वभाव के कारण वृक्ष तोड़े। हे (निशाचरों के) मालिक! देह सबको परम प्रिय है। कुमार्ग पर चलने वाले (दुष्ट) राक्षस जब मुझे मारने लगे॥2
***जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥ मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥3॥
भावार्थ:-
तब जिन्होंने मुझे मारा, उनको मैंने भी मारा। उस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझको बाँध लिया (किंतु), मुझे अपने बाँधे जाने की कुछ भी लज्जा नहीं है। मैं तो अपने प्रभु का कार्य करना चाहता हूँ॥3॥
***बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥ देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥4॥
भावार्थ:-
हे रावण! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ, तुम अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने पवित्र कुल का विचार करके देखो और भ्रम को छोड़कर भक्त भयहारी भगवान् को भजो॥4॥
*** जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥ तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे

कहें जानकी दीजै॥5॥
भावार्थ:-
जो देवता, राक्षस और समस्त चराचर को खा जाता है, वह काल भी जिनके डर से अत्यंत डरता है, उनसे कदापि वैर न करो और मेरे कहने से जानकीजी को दे दो॥5॥
दोहा :
*** प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि। गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥22॥
भावार्थ:-
खर के शत्रु श्री रघुनाथजी शरणागतों के रक्षक और दया के समुद्र हैं। शरण जाने पर प्रभु तुम्हारा अपराध भुलाकर तुम्हें अपनी शरण में रख लेंगे॥22॥
चौपाई :
*** राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥ रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥1॥
भावार्थ:-
तुम श्री रामजी के चरण कमलों को हृदय में धारण करो और लंका का अचल राज्य करो। ऋषि पुलस्त्यजी का यश निर्मल चंद्रमा के समान है। उस चंद्रमा में तुम कलंक न बनो॥1॥
*** राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥ बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥2॥
भावार्थ:-
राम नाम के बिना वाणी शोभा नहीं पाती, मद-मोह को छोड़, विचारकर देखो। हे देवताओं के शत्रु! सब गहनों से सजी हुई सुंदरी स्त्री भी कपड़ों के बिना (नंगी) शोभा नहीं पाती॥2॥
*** राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥ सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं॥3॥
भावार्थ:-
रामविमुख पुरुष की संपत्ति और प्रभुता रही हुई भी चली जाती है और उसका पाना न पाने के समान है। जिन नदियों के मूल में कोई जलस्रोत नहीं है। (अर्थात् जिन्हें केवल बरसात ही आसरा है) वे वर्षा बीत जाने पर फिर तुरंत ही सूख जाती हैं॥3॥
*** सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥ संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥4॥
भावार्थ:-
हे रावण! सुनो, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि रामविमुख की रक्षा करने वाला कोई भी नहीं है। हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा भी श्री रामजी के साथ द्रोह करने वाले तुमको नहीं बचा सकते॥4॥

दोहा :

*** मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान। भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥23॥

भावार्थ:-

मोह ही जिनका मूल है ऐसे (अज्ञानजनित), बहुत पीड़ा देने वाले, तमरूप अभिमान का त्याग कर दो और रघुकुल के स्वामी, कृपा के समुद्र भगवान् श्री रामचंद्रजी का भजन करो॥23॥

चौपाई :

*** जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी॥ बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥1॥

भावार्थ:-

यद्यपि हनुमान्‌जी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति से सनी हुई बहुत ही हित की वाणी कही, तो भी वह महान् अभिमानी रावण बहुत हँसकर (व्यंग्य से) बोला कि हमें यह बंदर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला!॥1॥

*** मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥ उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥2॥

भावार्थ:-

रे दुष्ट! तेरी मृत्यु निकट आ गई है। अधम! मुझे शिक्षा देने चला है। हनुमान्‌जी ने कहा- इससे उलटा ही होगा (अर्थात् मृत्यु तेरी निकट आई है, मेरी नहीं)। यह तेरा मतिभ्रम (बुद्धि का फेर) है, मैंने प्रत्यक्ष जान लिया है॥2॥

*** सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥ सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥3॥

भावार्थ:-

हनुमान्‌जी के वचन सुनकर वह बहुत ही कुपित हो गया। (और बोला-) अरे! इस मूर्ख का प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हर लेते? सुनते ही राक्षस उन्हें मारने दौड़े उसी समय मंत्रियों के साथ विभीषणजी वहाँ आ पहुँचे॥3॥

*** नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता॥ आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥4॥

भावार्थ:-

उन्होंने सिर नवाकर और बहुत विनय करके रावण से कहा कि दूत को मारना नहीं चाहिए, यह नीति के विरुद्ध है। हे गोसाईं। कोई दूसरा दंड दिया जाए। सबने कहा- भाई! यह सलाह उत्तम है॥4॥

*** सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर॥5॥

भावार्थ:-
यह सुनते ही रावण हँसकर बोला- अच्छा तो, बंदर को अंग-भंग करके भेज (लौटा) दिया जाए॥5॥

दोहा :
*** कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ। तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥24॥
भावार्थ:-
मैं सबको समझाकर कहता हूँ कि बंदर की ममता पूँछ पर होती है। अतः तेल में कपड़ा डुबोकर उसे इसकी पूँछ में बाँधकर फिर आग लगा दो॥24॥

लंकादहन

चौपाई :
*** पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि॥ जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई। देखउ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥1॥
भावार्थ:-
जब बिना पूँछ का यह बंदर वहाँ (अपने स्वामी के पास) जाएगा, तब यह मूर्ख अपने मालिक को साथ ले आएगा। जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं जरा उनकी प्रभुता (सामर्थ्य) तो देखूँ!॥1॥
*** बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना॥ जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना॥2॥
भावार्थ:-
यह वचन सुनते ही हनुमान्‌जी मन में मुस्कुराए (और मन ही मन बोले कि) मैं जान गया, सरस्वतीजी (इसे ऐसी बुद्धि देने में) सहायक हुई हैं। रावण के वचन सुनकर मूर्ख राक्षस वही (पूँछ में आग लगाने की) तैयारी करने लगे॥2॥
*** रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥ कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी॥3॥
भावार्थ:-
(पूँछ के लपेटने में इतना कपड़ा और घी-तेल लगा कि) नगर में कपड़ा, घी और तेल नहीं रह गया। हनुमान्‌जी ने ऐसा खेल किया कि पूँछ बढ़ गई (लंबी हो गई)। नगरवासी लोग तमाशा देखने आए। वे हनुमान्‌जी को पैर से ठोकर मारते हैं और उनकी हँसी करते हैं॥3॥
*** बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी॥ पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ

परम लघुरूप तुरंता॥4॥
भावार्थ:-
ढोल बजते हैं, सब लोग तालियाँ पीटते हैं। हनुमान्‌जी को नगर में फिराकर, फिर पूँछ में आग लगा दी। अग्नि को जलते हुए देखकर हनुमान्‌जी तुरंत ही बहुत छोटे रूप में हो गए॥4॥
*** निबुकि चढ़ेउ कप कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारीं॥5॥
भावार्थ:-
बंधन से निकलकर वे सोने की अटारियों पर जा चढ़े। उनको देखकर राक्षसों की स्त्रियाँ भयभीत हो गईं॥5॥
दोहा :
*** हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास। अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास॥25॥
भावार्थ:-
उस समय भगवान् की प्रेरणा से उनचासों पवन चलने लगे। हनुमान्‌जी अट्टहास करके गर्जे और बढ़कर आकाश से जा लगे॥25॥
चौपाई :
*** देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥ जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥1॥
भावार्थ:-
देह बड़ी विशाल, परंतु बहुत ही हल्की (फुर्तीली) है। वे दौड़कर एक महल से दूसरे महल पर चढ़ जाते हैं। नगर जल रहा है लोग बेहाल हो गए हैं। आग की करोड़ों भयंकर लपटें झपट रही हैं॥1॥
***तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहि उबारा॥ हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई॥2॥
भावार्थ:-
हाय बप्पा! हाय मैया! इस अवसर पर हमें कौन बचाएगा? (चारों ओर) यही पुकार सुनाई पड़ रही है। हमने तो पहले ही कहा था कि यह वानर नहीं है, वानर का रूप धरे कोई देवता है!॥2॥
*** साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥ जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥3॥
भावार्थ:-
साधु के अपमान का यह फल है कि नगर, अनाथ के नगर की तरह जल रहा है। हनुमान्‌जी ने एक ही क्षण में सारा नगर जला डाला। एक विभीषण का घर नहीं जलाया॥3॥
*** ताकर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥ उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥4॥
भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! जिन्होंने अग्नि को बनाया, हनुमान्‌जी उन्हीं के दूत हैं। इसी कारण वे अग्नि से नहीं जले। हनुमान्‌जी ने उलट-पलटकर (एक ओर से दूसरी ओर तक) सारी लंका जला दी। फिर वे समुद्र में कूद पड़े॥

लंका जलाने के बाद हनुमान्‌जी का सीताजी से विदा माँगना और चूड़ामणि पाना

दोहा :

*** पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि। जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥26॥

भावार्थ:-

पूँछ बुझाकर, थकावट दूर करके और फिर छोटा सा रूप धारण कर हनुमान्‌जी श्री जानकीजी के सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए॥26॥

चौपाई :

*** मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा॥ चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥1॥

भावार्थ:-

(हनुमान्‌जी ने कहा-) हे माता! मुझे कोई चिह्न (पहचान) दीजिए, जैसे श्री रघुनाथजी ने मुझे दिया था। तब सीताजी ने चूड़ामणि उतारकर दी। हनुमान्‌जी ने उसको हर्षपूर्वक ले लिया॥1॥

*** कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥ दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ सम संकट भारी॥2॥

भावार्थ:-

(जानकीजी ने कहा-) हे तात! मेरा प्रणाम निवेदन करना और इस प्रकार कहना- हे प्रभु! यद्‌यपि आप सब प्रकार से पूर्ण काम हैं (आपको किसी प्रकार की कामना नहीं है), तथापि दीनों (दुःखियों) पर दया करना आपका विरद है (और मैं दीन हूँ) अतः उस विरद को याद करके, हे नाथ! मेरे भारी संकट को दूर कीजिए॥2॥

*** तात सक्रसुत कथा सनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥ मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥3॥

भावार्थ:-

हे तात! इंद्रपुत्र जयंत की कथा (घटना) सुनाना और प्रभु को उनके बाण का प्रताप समझाना (स्मरण कराना)। यदि महीने भर में नाथ न आए तो फिर मुझे जीती न पाएँगे॥3॥

*** कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना॥ तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मोकहुँ सोइ दिनु सो राती॥4॥

भावार्थ:-

हे हनुमान्! कहो, मैं किस प्रकार प्राण रखूँ! हे तात! तुम भी अब जाने को कह रहे हो। तुमको देखकर छाती ठंडी हुई थी। फिर मुझे वही दिन और वही रात॥4॥

दोहा :

*** जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह। चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह॥27॥

भावार्थ:-

हनुमान्‌जी ने जानकीजी को समझाकर बहुत प्रकार से धीरज दिया और उनके चरणकमलों में सिर नवाकर श्री रामजी के पास गमन किया॥27॥ समुद्र के इस पार आना, सबका लौटना, मधुवन प्रवेश, सुग्रीव मिलन, श्री राम-हनुमान् संवाद

चौपाई :

*** चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥ नाघि सिंधु एहि पारहि आवा। सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा॥1॥

भावार्थ:-

चलते समय उन्होंने महाध्वनि से भारी गर्जन किया, जिसे सुनकर राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे। समुद्र लाँघकर वे इस पार आए और उन्होंने वानरों को किलकिला शब्द (हर्षध्वनि) सुनाया॥1॥

*** हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना॥ मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥2॥

भावार्थ:-

हनुमान्‌जी को देखकर सब हर्षित हो गए और तब वानरों ने अपना नया जन्म समझा। हनुमान्‌जी का मुख प्रसन्न है और शरीर में तेज विराजमान है, (जिससे उन्होंने समझ लिया कि) ये श्री रामचंद्रजी का कार्य कर आए हैं॥2॥

*** मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी॥ चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा॥3॥

भावार्थ:-

सब हनुमान्‌जी से मिले और बहुत ही सुखी हुए,जैसे तड़पती हुई मछली को जल मिल गया हो। सब हर्षित होकर नए-नए इतिहास (वृत्तांत) पूछते- कहते हुए श्री रघुनाथजी के पास चले॥3॥

*** तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए॥ रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे॥4॥

भावार्थ:-

तब सब लोग मधुवन के भीतर आए और अंगद की सम्मति से सबने मधुर फल (या मधु और

फल) खाए। जब रखवाले बरजने लगे, तब घूँसों की मार मारते ही सब रखवाले भाग छूटे॥4॥
दोहा :
*** जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज। सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज॥28॥
भावार्थ:-
उन सबने जाकर पुकारा कि युवराज अंगद वन उजाड़ रहे हैं। यह सुनकर सुग्रीव हर्षित हुए कि वानर प्रभु का कार्य कर आए हैं॥28॥
चौपाई :
*** जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि काई॥ एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा॥1॥
भावार्थ:-
यदि सीताजी की खबर न पाई होती तो क्या वे मधुवन के फल खा सकते थे? इस प्रकार राजा सुग्रीव मन में विचार कर ही रहे थे कि समाज सहित वानर आ गए॥1॥
*** आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा॥ पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपाँ भा काजु बिसेषी॥2॥
भावार्थ:-
(सबने आकर सुग्रीव के चरणों में सिर नवाया। कपिराज सुग्रीव सभी से बड़े प्रेम के साथ मिले। उन्होंने कुशल पूछी, (तब वानरों ने उत्तर दिया-) आपके चरणों के दर्शन से सब कुशल है। श्री रामजी की कृपा से विशेष कार्य हुआ (कार्य में विशेष सफलता हुई है)॥2॥
*** नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥ सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥3॥
भावार्थ:-
हे नाथ! हनुमान ने सब कार्य किया और सब वानरों के प्राण बचा लिए। यह सुनकर सुग्रीवजी हनुमान्‌जी से फिर मिले और सब वानरों समेत श्री रघुनाथजी के पास चले॥3॥
*** राम कपिन्ह जब आवत देखा। किएँ काजु मन हरष बिसेषा॥ फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥4॥
भावार्थ:-
श्री रामजी ने जब वानरों को कार्य किए हुए आते देखा तब उनके मन में विशेष हर्ष हुआ। दोनों भाई स्फटिक शिला पर बैठे थे। सब वानर जाकर उनके चरणों पर गिर पड़े॥4॥
दोहा :
*** प्रीति सहित सब भेंटे रघुपति करुना पुंज॥ पूछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज॥29॥
भावार्थ:-
दया की राशि श्री रघुनाथजी सबसे प्रेम सहित गले लगकर मिले और कुशल पूछी। (वानरों ने

कहा-) हे नाथ! आपके चरण कमलों के दर्शन पाने से अब कुशल है॥29॥

चौपाई :

*** जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया॥ ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥1॥

भावार्थ:-

जाम्बवान् ने कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए। हे नाथ! जिस पर आप दया करते हैं, उसे सदा कल्याण और निरंतर कुशल है। देवता, मनुष्य और मुनि सभी उस पर प्रसन्न रहते हैं॥1॥

*** सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक उजागर॥ प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू॥2॥

भावार्थ:-

वही विजयी है, वही विनयी है और वही गुणों का समुद्र बन जाता है। उसी का सुंदर यश तीनों लोकों में प्रकाशित होता है। प्रभु की कृपा से सब कार्य हुआ। आज हमारा जन्म सफल हो गया॥2॥

*** नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥ पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥3॥

भावार्थ:-

हे नाथ! पवनपुत्र हनुमान् ने जो करनी की, उसका हजार मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता। तब जाम्बवान् ने हनुमान्‌जी के सुंदर चरित्र (कार्य) श्री रघुनाथजी को सुनाए॥3॥

*** सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥ कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥4॥

भावार्थ:-

(वे चरित्र) सुनने पर कृपानिधि श्री रामचंदजी के मन को बहुत ही अच्छे लगे। उन्होंने हर्षित होकर हनुमान्‌जी को फिर हृदय से लगा लिया और कहा- हे तात! कहो, सीता किस प्रकार रहती और अपने प्राणों की रक्षा करती हैं?॥4॥

दोहा :

*** नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥30॥

भावार्थ:-

(हनुमान्‌जी ने कहा-) आपका नाम रात-दिन पहरा देने वाला है, आपका ध्यान ही किंवाड़ है। नेत्रों को अपने चरणों में लगाए रहती हैं, यही ताला लगा है, फिर प्राण जाएँ तो किस मार्ग से?॥30॥

चौपाई :

*** चलत मोहि चूड़ामनि दीन्हीं। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥ नाथ जुगल लोचन भरि बारी।

बचन कहे कछु जनककुमारी॥1॥
भावार्थ:-
चलते समय उन्होंने मुझे चूड़ामणि (उतारकर) दी। श्री रघुनाथजी ने उसे लेकर हृदय से लगा लिया। (हनुमान्‌जी ने फिर कहा-) हे नाथ! दोनों नेत्रों में जल भरकर जानकीजी ने मुझसे कुछ वचन कहे-॥1॥
*** अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बंधु प्रनतारतिहरना॥ मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥2॥
भावार्थ:-
छोटे भाई समेत प्रभु के चरण पकड़ना (और कहना कि) आप दीनबंधु हैं, शरणागत के दुःखों को हरने वाले हैं और मैं मन, वचन और कर्म से आपके चरणों की अनुरागिणी हूँ। फिर स्वामी (आप) ने मुझे किस अपराध से त्याग दिया?॥2॥
*** अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥ नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥3॥
भावार्थ:-
(हाँ) एक दोष मैं अपना (अवश्य) मानती हूँ कि आपका वियोग होते ही मेरे प्राण नहीं चले गए, किंतु हे नाथ! यह तो नेत्रों का अपराध है जो प्राणों के निकलने में हठपूर्वक बाधा देते हैं॥3॥
*** बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥ नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥4॥
भावार्थ:-
विरह अग्नि है, शरीर रूई है और श्वास पवन है, इस प्रकार (अग्नि और पवन का संयोग होने से) यह शरीर क्षणमात्र में जल सकता है, परंतु नेत्र अपने हित के लिए प्रभु का स्वरूप देखकर (सुखी होने के लिए) जल (आँसू) बरसाते हैं, जिससे विरह की आग से भी देह जलने नहीं पाती॥4॥
*** सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥5॥
भावार्थ:-
सीताजी की विपत्ति बहुत बड़ी है। हे दीनदयालु! वह बिना कही ही अच्छी है (कहने से आपको बड़ा क्लेश होगा)॥5॥
दोहा :
*** निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति। बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥31॥
भावार्थ:-
हे करुणानिधान! उनका एक-एक पल कल्प के समान बीतता है। अतः हे प्रभु! तुरंत चलिए और अपनी भुजाओं के बल से दुष्टों के दल को जीतकर सीताजी को ले आइए॥31॥

चौपाई :

*** सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना॥ बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही॥1॥

भावार्थ:-

सीताजी का दुःख सुनकर सुख के धाम प्रभु के कमल नेत्रों में जल भर आया (और वे बोले-) मन, वचन और शरीर से जिसे मेरी ही गति (मेरा ही आश्रय) है, उसे क्या स्वप्न में भी विपत्ति हो सकती है?॥1॥

*** कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥ केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी॥2॥

भावार्थ:-

हनुमान्‌जी ने कहा- हे प्रभु! विपत्ति तो वही (तभी) है जब आपका भजन-स्मरण न हो। हे प्रभो! राक्षसों की बात ही कितनी है? आप शत्रु को जीतकर जानकीजी को ले आवेंगे॥2॥

*** सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥ प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥3॥

भावार्थ:-

(भगवान् कहने लगे-) हे हनुमान्! सुन, तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तेरा प्रत्युपकार (बदले में उपकार) तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता॥3॥

*** सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥ पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥4॥

भावार्थ:-

हे पुत्र! सुन, मैंने मन में (खूब) विचार करके देख लिया कि मैं तुझसे उऋण नहीं हो सकता। देवताओं के रक्षक प्रभु बार-बार हनुमान्‌जी को देख रहे हैं। नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल भरा है और शरीर अत्यंत पुलकित है॥4॥

दोहा :

*** सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत। चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥32॥

भावार्थ:-

प्रभु के वचन सुनकर और उनके (प्रसन्न) मुख तथा (पुलकित) अंगों को देखकर हनुमान्‌जी हर्षित हो गए और प्रेम में विकल होकर 'हे भगवन्! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए श्री रामजी के चरणों में गिर पड़े॥32॥ ***अगला पेज...***